Current relevance of National Education Policy (2020).

Dr. Yajnapal Singh (B.Ed)
and
Dr. Ajay Kumar (B.Ed)
Swami Vivekananda College, Jhansi

यह अत्यंत स्पष्ट ही है कि नूतन शिक्षा नीति के इस दायित्व का निर्वहन मुख्य रूप से शिक्षक एवं उनकी शिक्षा पर ही निर्भर करता है। शिक्षा के व्यापक लक्ष्य को व्यक्त करते हुए 29 जुलाई, 2020 को घोषित हमारी इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति का भूमिका के अंतर्गत मानना है कि शिक्षा पूर्ण मानव क्षमता को प्राप्त करने, एक न्यायसंगत और न्यायपूर्ण समाज के विकास और राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने के लिए एक मूलभूत आवश्यकता है। शिक्षा नीति की दृष्टि में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक सार्वभौमिक पहूँच प्रदान करना मूल रूप से वैश्विक मंच पर सामाजिक न्याय और समानता, वैज्ञानिक उन्नति, राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक संरक्षण के संदर्भ में भारत की सतत प्रगति और आर्थिक विकास की कुंजी है। यह सच है कि सार्वभौमिक उच्च स्तरीय शिक्षा ही वह उचित माध्यम है, जिसके द्वारा देश की समृद्ध प्रतिभा और संसाधनों का सर्वोत्तम विकास और संवर्धन व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व के हित के लिए किया जा सकता है। यह भी स्पष्ट है कि अगले दशक में संसार के सबसे युवा जनसंख्या वाले हमारे देश में इन युवाओं को उच्चतर गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अवसर के उपलब्ध कराने पर ही राष्ट्र का भविष्य निर्भर करेगा। यह भी अत्यंत स्पष्ट है कि स्थिति की प्राप्ति हेतु ‘शिक्षक ही वह आधारभूत स्तंभ’ है, जिस पर संपूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया की सफलता केंद्रित रहती है। राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1964-66) द्वारा व्यक्त कथन कि ‘राष्ट्र का निर्माण कक्षाओं में हो रहा है’ के भाव को इसी संदर्भ में समझा जा सकता है।

KEYWORDS: राष्ट्रीय शिक्षा नीति, लक्ष्य , गुणवत्तापूर्ण, प्राचीन भारतीय परंपरा

परिचय

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) की स्वीकारोक्ति है कि शिक्षा-व्यवस्था में किए जा रहे आधारभूत परिवर्तनों के केंद्र में आवश्यक रूप से शिक्षक ही रहने चाहिए। शिक्षा की नई नीति को निश्चित रूप से, प्रत्येक स्तर पर शिक्षकों को समाज के सर्वाधिक सम्माननीय और अनिवार्य सदस्य के रूप में पुनः स्थान देने में सहायता करनी होगी, क्योंकि शिक्षक ही नागरिकों की हमारी अगली पीढ़ी को वास्तव में आकार देते हैं। इस नीति द्वारा शिक्षकों को सक्षम बनाने के लिए प्रत्येक संभव उपाय किए जाने की आवश्यकता है, जिससे वे अपने कार्य को प्रभावी रूप से कर सकें। नई शिक्षा नीति को प्रत्येक स्तर पर शिक्षण के व्यवसाय में सबसे होनहार लोगों का चयन करने में सहायता करनी होगी। इसके लिए उनकी आजीविका, सम्मान, मान-मर्यादा और स्वायत्तता सुनिश्चित करनी होगी, साथ ही तंत्र में गुणवत्ता नियंत्रण और उत्तरदायित्व की आधारभूत प्रक्रियाएँ भी स्थापित करनी होंगी। इस दृष्टि से शिक्षा नीति के आधारभूत सिद्धांतों एवं दर्शन के अंतर्गत शिक्षा-नीति की अपेक्षा है कि ‘हर बच्चे की विशिष्ट क्षमताओं की स्वीकृति, पहचान और उनके विकास हेतु प्रयास किया जाना चाहिए और इसके लिए केवल शिक्षकों को ही नहीं, अपितु अभिभावकों को भी इन क्षमताओं के प्रति संवेदनशील बनाना होगा, जिससे वे बच्चे की अकादमिक और अन्य क्षमताओं में उसके सर्वांगीण विकास पर भी पूरा ध्यान दे सकें।’

ध्यान देना होगा कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51(अ) में अभिभावक बच्चों की शिक्षा हेतु पूर्णतः उत्तरदायी हैं। यहाँ प्रयुक्त 'संवेदना' शब्द विशेष महत्त्व रखता है। इसमें समाया 'सम' उपसर्ग बच्चों के अनुभवात्मक स्तर तक आकर उनकी वेदना को अनुभूत करना है। यह इस तथ्य को मानने को प्रेरित करता है कि 'बच्चा कोरी स्लेट' नहीं है। उसके पास अनुभव भी हैं और अनुभूतियाँ भी हैं। उसके पास भावों का अभाव नहीं है। उसके पास रोकर बात मनवाने की शक्ति है। उसके पास हँसकर आकृष्ट करने की शक्ति है। खेल के मैदान में शीत को अथवा गरमी को हराने की शक्ति है। वह उस बीज रूपी कोश के समान है, जिसमें संपूर्ण फलयुक्त विशाल वृक्ष समाया है। प्राचीन भारतीय परंपरा में तैत्तिरीयोपनिषद् की शिक्षावल्ली में विकास की कल्पना को 'अन्नमयकोश, प्राणमयकोश, मनोमयकोश, विज्ञानमयकोश तथा आनंदमयकोश' के रूप में पञ्चकोशीय विकास के रूपक में चित्रित किया गया है, जो इसी तथ्य को ही उद्घाटित करता है कि 'बच्चा कोरी स्लेट' नहीं है। वह उर्वरित होनेवाली अंतः ऊर्जा से युक्त है, जिसके प्रस्फुटन की प्रक्रिया को ही स्वामी विवेकानंद ने शिक्षा की संज्ञा दी है। इसके लिए आवश्यकता है 'परिवेश के निर्माण की'। शिक्षकों की सार्थकता इसी में निहित है। यह नीति यही संदेश देती चलती है कि शिक्षकों का दायित्व बच्चों की 'रचनात्मकता और तार्किक सोच, तार्किक निर्णय लेने और नवाचार को प्रोत्साहित करने हेतु' प्रेरणा में समाया है। इस दृष्टि से 'विद्यार्थियों के चहुँमुखी विकास' को केंद्र में रखकर शिक्षा के संपूर्ण ताने-बाने को बुननेवाली इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति को अपने उद्देश्यों को व्यावहारिक आकार देने हेतु यदि 'शिक्षक-केंद्रित-नीति' भी कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

यद्यपि शिक्षा नीति के दो अध्याय 'पाँचवा एवं पंद्रहवा' साक्षात् 'शिक्षक व शिक्षक-शिक्षा' से जुड़े हैं। तथापि, संपूर्ण शिक्षा नीति के विभिन्न 'तथ्य व कथ्य' प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से 'शिक्षक' से की जानेवाली अथवा शिक्षकों के द्वारा की जानेवाली अपेक्षाओं की चर्चा करते हैं। नीति का पाँचवा अध्याय सामान्यतः शिक्षक के स्वरूप व उससे की जानेवाली अपेक्षाओं आदि की चर्चा करता है तो अध्याय 15 उसकी तैयारी हेतु चतुर्वर्षीय पाठ्यक्रम की प्रक्रिया को उद्घाटित करता हुआ शिक्षक-शिक्षा की चर्चा करता है।

इसी के साथ-साथ पाठ्यचर्या से संबद्ध चतुर्थ अध्याय में मुख्यतः निम्नलिखित विषयों की चर्चा 'शिक्षक एवं शिक्षक-शिक्षा' के आधार से संबद्ध है

ऽ अनिवार्य अधिगम तथा विमर्शात्मक चिंतन के विकास हेतु पाठ्यचर्या की सामग्री को कम करना

ऽ अनुभवात्मक अधिगम

ऽ विषयों के चयन में नम्यता के द्वारा विद्यार्थियों का सशक्तीकरण

ऽ बहुभाषावाद तथा भाषा की सशक्तता/बहुभाषावाद

ऽ सभी भाषाओं तथा छात्रों को उच्चतर गुणवत्ता के साथ पढ़ाया जाना

ऽ अनिवार्य विषयों, कौशलों तथा क्षमताओं का पाठ्यचर्यात्मक एकीकरण

ऽ स्थानीय सामग्री एवं आस्वाद के साथ राष्ट्रीय पाठ्यपुस्तकें

ऽ छात्रों के विकास हेतु आकलन के स्वरूप में परिवर्तन

ऽ प्रतिभाशाली छात्रों/विशिष्ट योग्यता युक्त छात्रों हेतु सहायता

इस दृष्टि से शिक्षण शास्त्र के प्रारूप में परिवर्तन अनिवार्य है। शिक्षा-नीति का संपूर्ण परिप्रेक्ष्य इस तथ्य पर आधारित है कि छात्र सक्रिय और चिंतनशील हैं, न कि निष्क्रिय। आलोचनात्मक चिंतन, समग्रता, खोज, चर्चा तथा विश्लेषण-आधारित अधिगम ही शिक्षण-अधिगम-प्रक्रिया का आधार है। यह भी सत्य है कि कोई दो बच्चे

समान नहीं होते। उनके परिवेश, अवस्था अथवा आयु के अनुसार भिन्नता रहती है। उनकी सामाजिकता, रुचि, अभिवृत्ति, विकास दर आदि विभिन्न तत्त्वों की दृष्टि से उनमें भिन्नता रहती है। उनकी अधिगम की शैलियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। अतः समान शिक्षण पद्धति अपनाने की अपेक्षा शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को वैविध्य पूर्ण, क्रीडा-आधारित, समग्र, एकीकृत, आनंदप्रद और रुचिकर एवं गतिविध्यात्मक होना चाहिए। एतदर्थ शारीरिक, संज्ञानात्मक एवं भावात्मक विकास में समन्वय होना चाहिए। कला-क्रीडा-केंद्रित पाठ्यचर्या इनका आधार होना चाहिए। इसी के साथ-साथ शिक्षार्थियों को भारत की समृद्ध विविधता का प्रत्यक्ष ज्ञान भी होना चाहिए। शिक्षक की भूमिका सहयोगी अथवा प्रेरक ही रहनी चाहिए। मनोरंजक और संवादात्मक शैली के माध्यम से सुनने एवं बोलने के अवसर हेतु परिवेश हेतु का निर्माण करना आवश्यक है। इसके लिए तकनीकी का बृहद् उपयोग किए जाने की विस्तृत चर्चा यह नीति करती है। इनका संबंध विद्यालय शिक्षा के परिवेश से अधिक है। विश्वविद्यालयों अथवा उच्चशिक्षा हेतु भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न प्रकार से भाव व्यक्त किए गए हैं।

शिक्षानीति के अनुच्छेद 5.1 में प्राचीनकाल का संदर्भ लेते हुए माना गया कि भारत में शिक्षक समाज के सबसे अधिक सम्मानित सदस्य थे और केवल सबसे अच्छे और विद्वान् ही शिक्षक बनते थे। विद्यार्थियों को निर्धारित ज्ञान, कौशल और नैतिक मूल्य प्रदान करने के लिए समाज शिक्षक या गुरुओं को उनकी आवश्यकताओं की सभी वस्तुओं को प्रदान करता था। नीति की यह भी चिंता है कि अध्यापक-शिक्षा की गुणवत्ता, भर्ती, पदस्थापन, सेवा शर्तों और शिक्षकों के अधिकारों की स्थिति वैसी नहीं है, जैसी होनी चाहिए, और इसके परिणामस्वरूप शिक्षकों की गुणवत्ता और उत्साह वांछित मानकों का प्राप्त नहीं कर पाता है। अतःकृ शिक्षकों के लिए उच्चतर स्थान और उनके प्रति आदर और सम्मान के भाव को पुनर्जीवित करना होगा, ताकि शिक्षण व्यवसाय में बेहतर लोगों को शामिल करने हेतु उन्हें प्रेरित किया जा सके। यह नीति इस तथ्य में पूर्ण विश्वास व्यक्त करती है कि हमारे छात्रों और हमारे राष्ट्र के लिए सर्वाेत्तम संभव भविष्य सुनिश्चित करने के लिए शिक्षकों की प्रेरणा और सशक्तीकरण की आवश्यकता है। अतः राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) के शिक्षा संबंधी प्रयासों की सफलता ‘शिक्षकों के सशक्तीकरण की प्रक्रिया’ में ही खोजनी होगी। यह शिक्षा नीति पद्धति और मूल्य संबंधी चर्चा बहुतायत से करती है, जिसका निहितार्थ है

ऽ निरंतर क्रियात्मक शोध की प्रक्रिया

ऽ पद्धति में लचीलापन

ऽ पुस्तक चयन

ऽ तार्किकता, विश्लेषण, रचनात्मकता, समस्या समाधान, पद्धतिचयन

ऽ आकलन की प्रक्रिया

ऽ सामग्री निर्माण

ऽ निरीक्षण प्रक्रिया

ऽ अंतःसेवा प्रशिक्षण

ऽ अधिगमशैली की पहचान

शिक्षा और समाज के परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में यह अनिवार्य हो जाता है कि जो कुछ सीखा गया है, उसका नवीनीकरण होता रहे। यह सीखना निरंतर चलता रहना चाहिए। यह बहुत ही स्पष्ट सा अभिमत है कि भारत की प्राचीन परंपरा मूलतः ज्ञान की ही परंपरा रही है। भारतीय वाङ्मय विभिन्न प्रकार से विभिन्न स्थानों पर पुनः-

पुनः इस बात को दोहराता सा चलता है कि रू ‘न हि ज्ञानसदृशं पवित्रमिह विद्यते’ (श्रीमद्भगवद्गीता, 4.38) अर्थात् इस जगत् में ज्ञान के समान कुछ और पवित्र नहीं है। अतः ज्ञान प्राप्त करते हुए ही हम सौ वर्षों तक जीवित रहेंकृ ‘बुध्येम शरदः शतम’ (अथर्ववेदः, 19.67.3) यह भी सत्य है कि ज्ञान का कोई अंत नहीं है ‘नान्तोज्ञानस्यविद्यते’ और न ही कोई सबकुछ जानता है, ’ सर्वः सर्वं न जानाति’।

अतः पुनः पुनः प्रार्थना की गई है कि ’ स्वाध्यायान्मा प्रमदः’ तैत्तिरीयोपनिषद् की शिक्षावल्ली में शिक्षा को चतुर्मुखी प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत किया गया हैकृ आचार्याे पूर्वरूपम। अन्तेवास्युत्तररूपम्। विद्या सन्धिः। प्रवचनं सन्धानम्। अर्थात् शिक्षा के चार आधारभूत तत्त्व हैं

ऽ प्रथम आचार्य

ऽ तत्पश्चात् अंतेवासी अर्थात् छात्र

ऽ इसके उपरांत दोनों को जोड़नेवाली विद्या

ऽ और अंततः प्रवचन रूपी संधान

इस सङ्कल्पना को निम्नलिखित रूप में देख सकते हैं आचार्यकृविद्याकृअंतेवासी प्रवचनम् = संधानम् इस शिक्षा-व्यवस्था का मूल लक्ष्य विद्यार्थियों का संपूर्ण अथवा सर्वांगीण विकास था। तैत्तिरीयोपनिषद् में इस सर्वांगीण विकास के स्वरूप को पञ्चकोशीय विकास के रूप में अभिव्यक्त किया गया हैकृ इसके निहितार्थ को निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है कि शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य शिक्षार्थी के समग्र विकास से जुड़ा हुआ था। अतः स्पष्ट ही है कि तत्कालीन शिक्षा-व्यवस्था गुरुकुलीय शिक्षा-व्यवस्था होने के नाते बच्चे के समग्र विकास के चक्र का मुख्य दायित्व आचार्य का ही था। आचार्य की भूमिका ही केंद्रिक भूमिका थी। आचार्य की इस केंद्रिक भूमिका के मुख्यतः पाँच आयाम थे

ऽ शारीरिक विकास की दृष्टि से अंतेवासियों अर्थात् विद्यार्थियों की प्रकृति (स्वभाव) का अवबोध। ऽ प्राणिक विकास की दृष्टि से विद्यार्थियों की विभिन्न शारीरिक गतिविधियों अथवा प्रणाली-तंत्र का भली-भाँति अवबोधन

ऽ मानसिक विकास की दृष्टि से विद्यार्थियों के मनोवैज्ञानिक तत्त्वों, यथा रुचि, प्रवृत्ति, अभिवृत्ति, अभिप्रेरणा, भावनात्मक विकास-प्रक्रिया आदि का अवबोध।

ऽ विद्यार्थियों के बौद्धिक विकास आदि की दृष्टि से बुद्धि के स्वरूप एवं प्रकार्य आदि का अवबोध।

ऽ विद्यार्थियों के आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से आध्यात्मिक तत्त्वों एवं आध्यात्मिक विकास की प्रक्रिया का अवबोध।

यह स्पष्ट ही है कि इस विकास का लक्ष्यात्मक केंद्र ‘अंतेवासी’, अर्थात् छात्र हैं तो इस दायित्व का निर्वहण करनेवाले शिक्षक/शिक्षिकाएँ ही हैं। शिक्षा के लक्ष्य, विधियाँ, पाठ्यक्रम, सामग्री, गतिविधियों, मूल्यांकन आदि के समन्वित रूप को ही शिक्षक-शिक्षा की पाठ्यचर्या के रूप में लिया गया था। ‘गुरुकुल प्रणाली’ के रूप में प्रतिष्ठित इस भारतीय शिक्षा-व्यवस्था में भाषा-शिक्षा का अपना एक विशिष्ट स्थान था। कारण भी स्पष्ट ही है कि ज्ञान की संपूर्ण प्रक्रिया मूल रूप से बच्चे के भाषाई विकास अथवा आधार पर निर्भर रहती है।

भाषा-दर्शन के विशिष्ट ग्रंथ ‘वाक्य-पदीयम्’ के रचयिता भर्तृहरि के अनुसारकृ

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते। अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते॥

अर्थात् संसार में प्रायः सभी संकल्पनाएँ मूलरूप से शब्द पर ही आश्रित रहती हैं। संपूर्ण ज्ञान मूलतः शब्द के द्वारा ही उद्भासित होता है। अतः भारतीय परंपरा में भाषा प्रयोग की क्षमता का विकास ही शिक्षा का प्रारंभिक लक्ष्य था। साथ ही यह अत्यंत स्पष्ट ही है कि तत्कालीन शिक्षा-व्यवस्था का स्वरूप मुख्यतः वाचिक था, अतः इस व्यवस्था में भाषा का विशिष्ट स्थान था। अतः शिक्षा का मूल अर्थ ही भाषाई विकास से संबद्ध था।

गुरुकुल में रहते हुए वे भाषा का व्याकरण आदि की दृष्टि से भलीभाँति अध्ययन करते थे। वस्तुतः भाषा ही विभिन्न शास्त्रों के अवबोधन का ही आधार नहीं अपितु आजीवन स्वयं अध्ययन का आधार है। यही कारण है कि नूतन शिक्षा-नीति में शैक्षिक संरचना में परिवर्तन करते हुए 5$3$3$4 प्रणाली के अंतर्गत प्रारंभिक पाँच वर्षों को भाषा एवं तार्किक विकास की दृष्टि से संख्यात्मक ज्ञान से जोड़ा है। शिक्षा-नीति (2020) की दृष्टि में 'क्या सीखा जाए' के साथ-साथ यह भी सीखना चाहिए कि 'कैसे सीखा जाता है' नीति का मानना है किकृ व्यवसाय और वैश्विक पारिस्थितिकी में तीव्र गति से आ रहे परिवर्तनों के कारण यह आवश्यक हो गया है कि बच्चे 'जो कुछ सिखाया जा रहा है, उसे तो सीखें ही', पर साथ ही वे सतत सीखते रहने की कला भी सीखें। इसलिए शिक्षा में विषयवस्तु को बढ़ाने की अपेक्षा इस बात पर अधिक बल देने की आवश्यकता है कि बच्चे समस्या-समाधान और तार्किक एवं रचनात्मक रूप से सोचना सीखें। अतः स्वाभाविक हो जाता है कि इसके लिए शिक्षकों भी सीखना होगा कि 'सीखा कैसे जाता है, इसे जानना व इसे सीखना। यही सीखने की सांदर्भिक भूमिका है।' नीति मानकर चलती है कि शैक्षिक प्रणाली का उद्देश्य अच्छे इंसानों का विकास करना है, जो तर्कसंगत विचार और कार्य करने में सक्षम हों, जिनमें करुणा और सहानुभूति, साहस और लचीलापन, वैज्ञानिक चिंतन और रचनात्मक कल्पनाशक्ति, नैतिक मूल्य और आधार हों। इसका उद्देश्य ऐसे उत्पादक लोगों को तैयार करना है, जो हमारे संविधान द्वारा परिकल्पित समावेशी और बहुलतावादी समाज के निर्माण में समुचित रीति से योगदान करे।

नीति की दृष्टि में एक अच्छी शैक्षिक संस्था वह है, जिसमें प्रत्येक छात्र का स्वागत किया जाता है और उसकी देखभाल की जाती है, जहाँ एक सुरक्षित और प्रेरणादायक शिक्षा वातावरण विद्यमान रहता है, जहाँ सभी छात्रों को सीखने के लिए विविध प्रकार के अनुभव उपलब्ध कराए जाते हैं और जहाँ सीखने के लिए अच्छे बुनियादी ढाँचे और उपयुक्त संसाधन उपलब्ध हैं। ये सब प्राप्त करना प्रत्येक शिक्षा संस्थान का लक्ष्य होना चाहिए। तथापि, साथ ही विभिन्न संस्थानों के बीच और शिक्षा के हर स्तर पर परस्पर सहज जुड़ाव और समन्वय आवश्यक है। स्पष्ट है कि इस प्रकार की संस्थाओं का निर्माण का दायित्व शिक्षकों का ही है।

सच तो यह है शिक्षक को स्वयं को एक संस्था के रूप में घड़ना होगा। बच्चों को पढ़ना सीखना होगा 'बच्चा ही वह पुस्तक, जिसे शब्दशः पढ़ना होगा' भारत द्वारा 2015 में अपनाए गए सतत विकास एजेंडा-2030 के लक्ष्य 4 (एस.डी.जी. 4) में परिलक्षित वैश्विक शिक्षा के विकास कार्यक्रम के अनुसार विश्व में 2030 तक 'सभी के लिए समावेशी और समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने और जीवन-पर्यंत शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा दिए जाने' का लक्ष्य है। अध्यापकों को स्वयं को इस प्रकार घड़ने की आवश्यकता है कि वे विद्यार्थियों को विविध विषयों के बीच अंतर्संबंधों को देखना सिखा पाएँ, कुछ नया सोचना सिखा पाएँ और नई जानकारी का नई और परिवर्तित होती हुई परिस्थितियों या क्षेत्रों में उपयोग करना सिखा पाएँ। आवश्यकता है कि शिक्षण-प्रक्रिया को शिक्षार्थी केंद्रित करते हुए निम्नलिखित तत्त्वों से युक्त करने कीकृ जिज्ञासा, खोज, अनुभव, संवाद, लचीली, समग्र एवं समन्वित रूप से देखने एवं समझने में सक्षम बनानेवाली तथा रुचिपूर्णता, ताकि शिक्षा शिक्षार्थियों के जीवन के सभी पक्षों और क्षमताओं का संतुलित विकास करने के योग्य हो सके।

शिक्षा-नीति की अपेक्षा है कि शिक्षक पाठ्यक्रम में समाविष्ट विज्ञान, गणित, बुनियादी कलाओं, शिल्प, मानविकी, 'लिब्रल-आर्ट' दृष्टिकोण का विकास, उच्च गुणवत्ता वाले अनुसंधान पर अवधान, खेल एवं स्वास्थ्य, भाषाओं, साहित्य, संस्कृति एवं मूल्यों के बीच परस्पर संबंधों को समझने एवं समझाने हेतु समर्थ हो सकें। शिक्षकों से की जानेवाली अपेक्षाओं के संदर्भ में शिक्षा-नीति की अपेक्षा है कि शिक्षा से चरित्र निर्माण होना चाहिए, शिक्षार्थियों में नैतिकता, तार्किकता, करुणा और संवेदनशीलता विकसित करनी चाहिए, साथ ही व्यवसाय के लिए सक्षम बनाना चाहिए। इस दृष्टि से शिक्षकों को विद्यार्थियों के समक्ष एक सर्वांगीण विकास वाले प्रतिमान के रूप में उपस्थित होना चाहिए।

नूतन राष्ट्रीय शिक्षा नीति के लक्ष्य व मूलभूत सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में शिक्षक-शिक्षा को निम्नलिखित तत्त्वों को अपना आधार बनाना होगाः

ऽ बुनियादी साक्षरता और संख्याज्ञान को सर्वाधिक प्राथमिकता देना,

ऽ लचीलापन, ताकि शिक्षार्थियों में उनके सीखने के तौर-तरीके और कार्यक्रमों को चुनने की क्षमता हो, और इस तरह वे अपनी प्रतिभा और रुचियों के अनुसार जीवन में अपना रास्ता चुन सकें;

ऽ कला और विज्ञान, पाठ्यक्रम और पाठ्ेयतर गतिविधियों, व्यावसायिक और शैक्षिक धाराओं आदि के बीच कोई भेद न होना चाहिए,

ऽ ज्ञान की एकात्मकता और अखंडता की सुनिश्चितता,

ऽ बहु-विषयात्मकता युक्त समग्र शिक्षा,

ऽ अवधारणात्मक समझ पर बल,

ऽ नैतिकता, मानवीय और संवैधानिक मूल्य यथा, सहानुभूति, अन्यों का सम्मान, स्वच्छता, शिष्टाचार, लोकतांत्रिक भावना, सेवा भावना, सार्वजनिक संपत्ति का सम्मान वैज्ञानिक चिंतन, स्वतंत्रता, उत्तरदायित्व, बहुलतावाद, समानता और न्याय आदि का विकास;

ऽ अध्ययन-अध्यापन के कार्य में भाषा की शक्ति को प्रोत्साहन एवं भाषा संबंधी बाधाओं को दूर करना,

ऽ सतत मूल्यांकन,

ऽ तकनीकी का उपयोग,

ऽ दिव्यांग बच्चों के लिए शिक्षा की सुलभता,

ऽ पाठ्यक्रमों, शिक्षा-शास्त्र और नीति में स्थानीय संदर्भ की विविधता एवं सम्मान,

ऽ शैक्षिक निर्णयों में समता और समावेशन,

ऽ सभी छात्र शिक्षा प्रणाली में सफलता प्राप्त करने के योग्य हैं;

ऽ सभी स्तरों के शिक्षा पाठ्यक्रम में तालमेल, प्रारंभिक बाल्यावस्था देख-भाल तथा शिक्षा से,

ऽ गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और विकास के लिए उत्कृष्ट स्तर का शोध,

ऽ निरंतर अनुसंधान और नियमित मूल्यांकन के आधार पर प्रगति की सतत समीक्षा,

ऽ भारत की समृद्ध और वैविध्यपूर्ण प्राचीन एवं आधुनिक संस्कृति का समन्वय,

ऽ गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुँच को प्रत्येक बच्चे का मौलिक अधिकार माना जाना चाहिए,

ऽ निरंतर व्यावसायिक विकास, सकारात्मक कार्य वातावरण और सेवा की स्थिति,

शिक्षा नीति की दृष्टि छात्रों में 'भारतीय होने का गर्व न केवल विचारों में अपितु व्यवहार, बुद्धि और कार्यों में भी और साथ ही ज्ञान, कौशल, मूल्यों और सोच में भी होना चाहिए, जो मानवाधिकारों, स्थायी विकास और जीवनयापन तथा वैश्विक कल्याण के लिए प्रतिबद्ध हो, ताकि वे वास्तविक अर्थ में वैश्विक नागरिक बन सकें।' अतः आवश्यक है शिक्षकों की क्षमताओं का अधिकतम स्तर तक विकास, ताकि वे कार्य प्रभावी ढंग से कर सकें। शिक्षकों, छात्रों, अभिभावकों, प्रधानाध्यापकों और अन्य सहायक कर्मचारियों के एक समावेशी समुदाय का अंग बन सके। नूतन शिक्षा नीति (2020) का स्पष्ट मानना है कि शिक्षा के सभी चरणों में उच्चतम-गुणवत्ता वाले शिक्षकों की आवश्यकता होगी और किसी भी चरण को किसी अन्य की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं माना जाएगा तथा शिक्षकों के लिए उच्चतर स्थान और उनके प्रति आदर और सम्मान के भाव को पुनर्जीवित करना होगा, ताकि शिक्षण व्यवसाय में कुशल लोगों को सम्मिलित करने हेतु उन्हें प्रेरित किया जा सके। हमारे छात्रों और हमारे राष्ट्र के लिए सर्वोेत्तम संभव भविष्य सुनिश्चित करने के लिए शिक्षकों की प्रेरणा और सशक्तीकरण की आवश्यकता है। इस संदर्भ में उत्कृष्ट शिक्षकों के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षण कार्य करने के लिए प्रोत्साहन देने की बात यह नीति विशेष रूप से करती है। विशेष रूप से ऐसे क्षेत्रों में, जो वर्तमान में सबसे अधिक शिक्षक की कमी का सामना कर रहे हैं और वहाँ उत्कृष्ट शिक्षकों की सबसे बड़ी आवश्यकता है। नीति का मानना है कि 'ग्रामीण विद्यालयों में पढ़ाने के लिए एक प्रमुख प्रोत्साहन विद्यालय परिसर में या उसके आस-पास स्थानीय आवास का प्रावधान होगा या ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय आवास रखने में सहायता करने के लिए आवास-भत्ते में वृद्धि होगी।' सार रूप में कहा जा सकता है कि नूतन शिक्षा नीति-2020 की दृष्टि में शिक्षण-शास्त्र को एक सशक्त भारतीय और स्थानीय संदर्भ देने की दृष्टि से पुनर्गठित करने का प्रश्न अत्यत महत्त्वपूर्ण है, ताकि चरितार्थ किया जा सकेकृ 'सभी बच्चे सीख रहे हैं।'